Vol. 3, No. 2 (July 2014) P. 36-39 Sangeet Galaxy
ISSN: 2319-9695

अवनद्ध वाद्यों की बंदिशों में स्वर एवं व्यंजन के संयोजन की अवधारणा (तबला वाद्य के संदर्भ में)

दीपक त्रिपाठी, शोधार्थी
संगीत एवं मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
E-mail- deep.naadbramha333@gmail.com

स्वर एवं व्यंजन किसी भी भाषा के मूल आधार होते हैं। जिनके परस्पर संयोजन से वर्णाक्षरों के विभिन्न स्वरूप, अक्षरों से सार्थक शब्द, शब्दों से वाक्य और वाक्यों से भाषा का संचालन होता है। अर्थात् न तो स्वर–स्वर ही सार्थक शब्दों का निर्माण कर सकते हैं और न ही व्यंजन–व्यंजन ही यह सामर्थ्य रखते हैं। उदाहरणार्थ – "क" व्यंजन को ही लें इसमें स्वरों के क्रमिक संयोजन से इस एक व्यंजन के विभिन्न वर्णाक्षर बनेंगे। जैसे – क, का, कि, की, ,,,,,,,,,,,,,,,,,,आदि।

इसी प्रकार स्वरों से व्यंजित किसी अन्य व्यंजन के एक या एक से अधिक के सम्मिलन से शब्दों का निर्माण होता है, जैसे – क + ल = कल (जो आने वाले दिन को इंगित करने वाला शब्द है), का + ल = काल (जो समय का परिचायक है), कि + ला = किला (एक ऐतिहासिक धरोहर), आदि ऐसे अनेकार्थ शब्दों का शब्दकोश तैयार होता है, जिनके माध्यम से भाषा का अस्तित्व निर्धारित होता है।

सर्वप्रथम भाषा के आधार पर हम स्वर एवं व्यंजन की परिभाषा एवं उनकी संख्या पर विचार करेंगे।

स्वर

वह वर्ण जिनके उच्चारण के लिए किसी अन्य वर्ण की सहायता नहीं होती, वे स्वर कहलाते हैं। इनकी संख्या हिन्दी साहित्य में 12 निर्धारित है। इनको दो वर्गों में बाँटा गया है।

1 – ह्रस्व स्वर 2 – दीर्घ स्वर

ह्रस्व स्वर – वे स्वर जिनके उच्चारण में सूक्ष्म आन्दोलन होता है तथा जिनके अक्षरकाल को लंबित न किया जा सके, ह्रस्व स्वर कहलाते हैं। ये हैं – अ, इ, उ, ऋ, ऌ।[1]

दीर्घ स्वर – वे स्वर जिनके अक्षरकाल को लंबित किया जा सके, दीर्घ स्वर कहलाते है।ये हैं– आ, ई, ऊ, ॡ, ऐ, ऐ, ओ, औ।

ॠ (दीर्घ), ऌ, ऌ॒ (हृस्व, दीर्घ) का प्रयोग अब नहीं होता है।[2]

"अं" अनुस्वर के अन्तर्गत व "अः" विसर्ग के अन्तर्गत आता है।

व्यंजन

जिन वर्णों का उच्चारण स्वरों की सहायता के बिना सम्भव नहीं हो पाता वे वर्ण व्यंजन कहलाते हैं। वर्णमाला में स्वरों कों पृथक कर देने पर शेष वर्ण क, ख, ग, घ आदि वर्ण व्यंजन के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दी साहित्य में इनकी संख्या 36 है। उच्चारण की दृष्टि से इन्हें चार वर्गों में रखा गया है।[3]

1 स्पर्श व्यंजन – क से म तक के वर्ण।

2 अन्तस्थ व्यंजन – य, र, ल, व।

3 ऊष्म व्यंजन – श, ष, स, ह।

4 संयुक्त व्यंजन – क्ष, त्र, ज्ञ।

उपरोक्त विवरण हिन्दी भाषा के आधार पर दिया गया है। सर्वप्रचलित भाषा अँग्रेजी में भी स्वर एवं व्यंजन होते हैं जिन्हें क्रमशः vowel और consonant कहते हैं। अँग्रेजी वर्णमाला में कुल 26 वर्ण हैं। जिनमें a, e, i, o, u ये पाँच स्वर तथा शेष b, c, d, e, f, g आदि 21 वर्ण व्यंजन के अन्तर्गत आते हैं।

अवनद्ध वाद्यों पर बजने वाले पाटवर्णों की भी एक भाषा होती है जो कि मानवी भाषा से एकदम अलग होती है। प्राचीन शास्त्रकारों ने अपनी कल्पना शक्ति के अनुसार अवनद्ध वाद्यों के चर्म के विभिन्न क्षेत्रों से विभिन्न प्रकार के अघातों द्वारा निकलने वाली निश्चित ध्वनियों को समझने व समझाने के लिए उनका निश्चित अक्षरों के रूप में नामकरण किया जिन्हे पाटवर्ण या पाटाक्षर कहा गया। अक्षर शब्द का अर्थ ही होता है अनाशवान। अतः वर्ण अखण्ड मूल ध्वनि का नाम है। वह किसी शब्द का वह खण्ड है जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक वर्ण की ध्वनि अपना एक विशेष आकार रखती है। इसी आकार को वर्ण कहते हैं। प्रत्येक भाषा में कई वर्ण होते हैं।4 फिर चाहे वह अवनद्ध वाद्य की भाषा ही क्यूँ न हो। वह भी अपना एक पृथक साहित्य रखती है, जो शब्द सौष्ठव, वाक्य निर्मिति के तत्वों सम्बन्धी व्याकरण का पालन भी करती है। पाटाक्षरों के शब्द सौष्ठव में स्वर–व्यंजन की अहम् भूमिका नज़र आती है। जिनके क्रमवत् संयोग से बोलों का विशाल शब्दकोश तैयार हुआ, जिसने तबला/पखावज जैसे वाद्यों की भाषा को जन्म दिया।

पाटाक्षरों के सन्दर्भ में नाट्यशास्त्र में (33/40) सोलह अक्षर ध्वनियों का उल्लेख किया है, वे हैं – क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, म, र, ल, ह। इन 16 अक्षरों में से आंकिक के दाँयें मुख से क, ट, र, त, ठ, द, ध तथा बाँयें मुख से ग, ह, घ उर्ध्वक में धकार और आलिंग्य में क, र, ण, ध, व तथा ल अक्षरों का वादन बताया है (33/43)। उक्त व्यंजनों में स्वर के संयोग से उच्चारण बताये हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐ, ऐ, ओ, औ, अं, अः इन स्वरों को उपरोक्त 16 व्यंजनों से संयोग करने पर प्रत्येक व्यंजन क, का, कि, की, कु, कू के इत्यादि पाटवर्ण बनते थे।(35/43) ह, म को अचल या शुद्ध बताते हुए उनमें स्वर संयोग न होना बताया है। इसके अलावा दो व्यंजनों के आपसी संयोग के साथ स्वर संयोग द्वारा भी पाटवर्ण बताये हैं, जैसे – द्रं, ध्रं, त्रं, क्लं आदि। इस प्रकार स्वर संयोग से बने अन्य सभी रूपों को मिलाकर दोनो हाथों से वादन करते हुए इन सभी अक्षरों की ध्वनियाँ निर्मित की जाती थीं।5

भाषा की सहजता उसके नियमित प्रयोग से सिद्ध होती है। पाटाक्षरों के निर्धारण के उपरांत निरन्तर उनकी वादन विधि व प्रायोगिक प्रक्रियाओं पर विश्लेषण करने से कालान्तर में वादन शैलियों की एक सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित कड़ी का प्रादुर्भाव हुआ।

समय के साथ–साथ मानव समाज का परिवर्तन भी होता रहा। संगीत भी अपनी नयी–नयी शक्ल में ढलता रहा, गायन शैलियों के परिवर्तन के फलस्वरूप अवनद्ध वाद्यों में समुचित बदलाव हुए – कोमल अंग की ख़्याल गायकी की संगत के लिए तबला नामक वाद्य का प्रादुर्भाव हुआ। तबले के दाँयें–बाँयें पर अलग–अलग प्रकार से अलग–अलग स्थानों पर उत्पन्न ध्वनि को विशिष्ट अक्षरों अथवा बोलों से पहचाना गया तथा इस प्रकार तबला वादन की भाषा का

निर्माण हुआ। तबले की भाषा में देश, काल की स्थिति का बहुत प्रभाव रहा एक वर्ण को भिन्न–भिन्न प्रान्तों में भिन्न–भिन्न उच्चारण से बोला गया तथापि बोलों के निकास में काफी साम्यता बनी रही।

तबले के वर्ण(बोल) संख्या का अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग उल्लेख किया है। उसे यदि हम सूक्ष्म दृष्टि से देखते है तो मुख्य 7 वर्ण ही बनते हैं। वे हैं – क, ग/घ, त, द, ट, न, र। तबले की भाषा में तालव्य, कण्ठय और दन्तय व्यंजनों का प्रयोग दिखाई देता है। ओष्ठय और उकाराँत स्वर वर्ज्य माने गये हैं।

दाँयें पर – त/न, तिं, दीं/तू, ते/तेत्, टे/र

बाँयें पर – क, ग/घ

इन सात पाटाक्षरों के क्रमवत् संयोग से व्यंजनमय व स्वरमय शब्दों का निर्माण हुआ जिसके आधार पर तबले की भाषा का विकास हुआ। सर्वप्रथम हम उपर्युक्त सात अक्षरों में स्वर वर्ण एवं व्यंजन वर्ण को पृथक करेंगे।

स्वर वर्ण – त/न, दीं/तू, तिं, ग/घ

व्यंजन वर्ण – ते/तेत्, टे/र, क

दाँयें और बाँयें के वर्ण मिलकर कुछ स्वरमय एवं व्यंजनमय वर्णों का निर्माण करते हैं।

स्वरमय वर्ण – त/न + ग/घ = "धा"

तिं + ग/घ = "धिं"

व्यंजनमय वर्ण – ते/तेत् + ग/घ = "धित्"

टे/र + ग/घ = "धे"

ते/ति + र/टे = त्र

क + ति/ते = कत्/कड़/क्ड़

क + त्र = कृ

अतः ये वर्ण एकाक्षरी तो हैं किन्तु वादन की दृष्टि से दो पाटवर्णों को मिलाकर एक वर्ण बना है। उपर्युक्त विवरण के आधार पर इन्हे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1 स्वरयुक्त वर्ण – त/न, तिं, दीं/तू, ग/घ।

2 व्यंजनयुक्त वर्ण – ते/तेत्, टे/र, क।

3 संयुक्त वर्ण – इन्हे पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

क – स्वरप्रधान संयुक्त वर्ण – धा, धिं, आदि।

ख – व्यंजनप्रधान संयुक्त वर्ण – धित्, धे, त्र आदि।

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर हम तबले के बोलों का अक्षरकाल की दृष्टि से विभागीकरण करेंगे।

एक अक्षरकाल के बोल– धा, धिं, ता, न, दीं, ते, तित्, धित्, क, ग, तू त्र, कृ आदि।

दो अक्षरकाल के बोल– धाती, धादीं, धेटे, तिट, किट, तक, कत, नागे, गेना, धिना, नाधा, त्रक, आदि।

तीन अक्षरकाल के बोल– धातेटे, धातूना, धागेन, धातिंना, धाधिना, धादिंता, नगेन, नातीना, नानाना, दींदींदीं आदि।

चार अक्षरकाल के बोल– धागेतेटे, तागेतेटे, कृधातिना, धिनागिना, धिनगिन, ताकेत्रक, ताकेनाना आदि।

उपर्युक्त विभागीकरण के आधार पर ही तबला वादन की भाषा का व्याकरण निर्धारित होता है। इसी के उचित प्रयोग से वादन शैलियों का निर्माण हुआ और निरन्तर उसमें शोधपरक दृष्टिकोंण रखने से तबला वाद्य संगत के साथ–साथ सोलो वाद्य के रूप में संगीत जगत् में मुखरित हुआ।

संदर्भ ग्रंथ–सूची :–

1 – मराठे, मनोहर भालचन्द्र राव, तालवाद्य शास्त्र, प्रकाशक, शर्मा पुस्तक सदन, लश्कर, ग्वालियर म0प्र0

2 – माईणकर, सुधीर, तबला वादन : कला एवं शास्त्र, प्रकाशक, अ0 भा0 गांधर्व महाविद्यालय, मिरज

3 – "यमन", अशोक कुमार, संगीत रत्नावली, प्रकाशक, आभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 2008

4 – डॉ0 चौधरी, सुभद्रा, भारतीय संगीत में "निबद्ध", प्रकाशक, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2004

5 – डॉ0 टाक, तेज सिंह, नेट संगीत, प्रकाशक, बेकराँ आलमी फाउण्डेशन, लखनऊ, प्रथम संस्करण 2010

6 – आचार्य ब्रहस्पति, के0सीडी0, संगीत चिन्तामणि, प्रकाशक, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0प्र0), संशोधित सं0 1976

7 – सेन, अरूण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, प्रकाशक, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, भोपाल(म0प्र0), सं0 तृतीय 2005